उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो ।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—३ नवम्बर–दिसम्बर—१९८४ अंक—११-१२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा' ।।

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सह संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

षट् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीमाँ सारदा ने कहा है

(१)

यदि तुम ईश्वर को नहीं पुकारो—और कितने लोग तो उन्हें याद ही नहीं करते हैं—इससे उनका क्या ? यह तो तुम्हारा ही दुर्भाग्य है। भगवान की ऐसी माया है कि उन्होंने ऐसा करके सबको भुलाये रखा है। ईश्वर सोचते हैं—वे सब प्रसन्न हैं, उन्हें इसी तरह रहने दो।

(२)

जैसे फूल को हिलाने-डुलाने से सुवास निकलता है, चन्दन घिसते-घिसते सुगन्ध बाहर निकलती है, उसी प्रकार भगवत्तत्त्व का विवेचन करते-करते तत्त्वज्ञान का उदय होता है। यदि वासना-रहित हो पाओ तो अभी ईश्वर-लाभ होगा।

(३)

उनका स्मरण कर खाना-पीना। जो कुछ खाना, भगवान को देकर खाना। अप्रसादी अन्न नहीं खाना चाहिए। जैसा अन्न खाओगे वैसा रक्त बनेगा। शुद्ध अन्न खाने से शुद्ध रक्त बनेगा, मन शुद्ध होगा, शरीर में बल होगा। शुद्ध मन में शुद्ध भक्ति होती है, प्रेम होता है।

(४)

ईश्वर के निकट रो-रोकर कहो,—"ठाकुर, मुझे अपनी ओर कर लो, मुझे शान्ति दो।" इस प्रकार करते-करते तुम्हारे प्राणों में स्वतः शान्ति आएगी।

सारदा नमन

—भवानीभीख त्रिपाठी

परमार्ति सदा जन की हरतीं उनकी करतीं सब पूरित आशा
रत्न थीं नारियों में मणि माँ वे सही सही मां की रहीं परिभाषा
मन को इनके न कदापि रुचा गुड़ियों के विवाह का खेल तमाशा
पूजन ध्यान की ओर थीं उन्मुख सन्त सयानों की बोलती भाषा ॥१॥

जन्म हुआ अति रंक कुटुम्ब में है इससे श्रमशीलता आयी
नीर औ क्षीर विवेकिनी बुद्धि थी ठाकुर जी को भी बाजी हरायी
याचना भाई न मां को कभी सदा त्याग उदारता ही दिखलायी
माँ के न अवरस सन्तति थी पर लाख करोड़ की मां कहलायीं ॥२॥

शान्ति रही मुख मण्डल पै दुःख में भी न आकुलता दिखलायी
रमता रहा ध्यान सदा भगवान के राम की इष्ट समीपता पायी
दान दिया श्रम का दया का इन्हें लोभ की छू न गई परछाईं
देर लगी नहीं टेर सुनी जब दीन सहायता के हित धायीं ॥३॥

वीच उठा करती उर सिन्धु में ईश्वर की अनुभूति की ऊँची
कोई बखान सकेगा नहीं बगरी मणि मां की सुकीर्ति समूची
दिव्य रखा उर मन्दिर को शुभ धर्म सुकर्म की लेकर कूँची
व्यस्त रही सदा भोजन दान में आश्रमियों की रही बड़ी सूची ॥४॥

न फिरा कुछ पाये कोई नर भी दरबार में मां के जो आ गया है
मणि मां के घुसा दरबार में जो अपनी बिगड़ी बनवा गया है
नर कोई बखान सकेगा नहीं यश मां का चतुर्दिक छा गया है
है सिर अंक में मां के तो रंक भी कौन पदार्थ न पा गया है ॥५॥

सम्पादकीय सम्बोधन

श्रीमाँ सारदा

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

'विवेक शिखा' का तीसरा वर्ष इस अंक के साथ ही पूरा हो रहा है। हमें अनेक असुविधाओं के बीच काम करना पड़ रहा है। स्वभावत: पत्रिका के प्रकाशन में अनेक प्रकार की त्रुटियाँ रह जाती हैं। तथापि आप सबका प्रेम हमें निरन्तर प्राप्त होता रहता है और इससे हमें बल मिलता है। विश्वास है, आप का स्नेह विवेक शिखा को इसी प्रकार निरन्तर अबाध गति से मिलता रहेगा।

आज हम विचित्र संकटों से गुजर रहे हैं। चारों ओर हत्या, लूट-पाट और राहजनी की घटनाएँ घट रही हैं। चारित्रिक मूल्यों का ऐसा पतन इसके पूर्व शायद ही कभी देखा गया हो। देश अपने भीतर से इतना दुर्बल हो गया है, इतना रुग्ण और अशक्त हो गया है कि और तो और हम प्रधानमन्त्री तक की रक्षा नहीं कर पाते हैं। विश्वासघात, क्रूरता और धर्मोन्माद ही जैसे हमारी राष्ट्रीय विरासत हो। आवेश ही हमारा वैभव, अविवेक ही हमारी निधि और असहिष्णुता ही हमारी सम्पदा हो गयी है। संसार के सामने हम आज अपना कैसा विकृत और गर्हित चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं!

क्यों हम भीतर से टूट और बिखर रहे हैं? क्यों हमारी चेतना दरिद्र होती जा रही है? मुख्य कारण है, हमने त्याग की जगह शिश्नोदरपरायणता, भोग-विलासिता को अपना जीवन-दर्शन बना लिया है। भोग-वृति की अधिकता ही हमें हिंसक, क्रूर और असहिष्णु बनाती है। यह भोगैषणा है जो पुरुष को स्वार्थान्ध और हिंस्र पशु बनाती है; यह भोगैषणा ही है जो नारियों को अमर्यादित और उन्मत्त बनाती है। निश्चय ही हमें भोगवादी संस्कृति को दूर से ही नमस्कार करना होगा।

भोगवाद की इस निविड़ तिमिर वेला में हमें श्रीमाँ सारदा की जीवन-गाथा का स्मरण हो आता है। श्रीमाँ सारदा—कठोर त्याग, प्रबल वैराग्य और गंभीर तपस्या की प्रतिमूर्ति थीं। जहाँ त्याग और वैराग्य होते हैं करुणा, प्रेम और सहिष्णुता की त्रिवेणी वहीं बहती है। श्रीमाँ सारदा ऐसी ही एक त्रिवेणी थीं। चन्द्रमा में भी दाग है, पर माँ सर्वथा निरंजन निष्कलंक हैं। तभी तो देह धारण कर भी वे देहैषणा से सर्वथा मुक्त थीं। शरीर से संतान उत्पन्न नहीं करने पर अशेष अपार आर्त-जनों की एकान्त माता थीं। अमजद जैसे मुसलमान, निवेदिता जैसी ईसाई, लाटू जैसे पिछड़ी जाति के प्राणी और कितने ही पारसी, लुहार तथा ब्राह्मण जनों पर माँ सारदा के स्नेहिल आँचल की अमृत-धारा समान-भाव से बरसती रहती थी अन्तहीन, अशेष और अकुंठ रूप में।

एक ओर वे गर्दन भर पानी में घुसकर पशुओं के लिए घास काटती हैं, जीविका के लिए स्वयं कुदाल चलाकर साग बोती हैं और दूसरी ओर तापित-शापित प्राणियों के लिए मंत्र-दानकर दीक्षा देती हैं। एक ओर अपनी संतानों के जूठे पात्रों को स्वयं धोती हैं और दूसरी ओर श्रीरामकृष्ण की साधना में सहयोगिनी बनती हैं।

माँ सारदा गंगा हैं। वे सबके लिए हैं। श्रीरामकृष्ण जिसे स्वीकार नहीं कर पाते थे, उसकी शरण-स्थली माँ ही थीं। शिक्षा के नाम पर प्रायः शून्य माँ कभी क्रांतिकारियों को शरण देती थीं; कभी नारी-अधिकार को सुरक्षा प्रदान करती थीं और कभी एक झाड़ू को भी जोर से पटकने का विरोध करती थीं।

आज देश को जरूरत है माँ सारदा के चारित्र्य के अनुसरण की। माँ सारदा का अर्थ ही है अशेष ममता की अखंड ज्योति-शिखा, अपार करुणा की अनन्त निर्झरणी, निस्संग सेवा की निस्तरंग सरिता।

आज के इस तिमिरान्ध परिवेश में हमें माँ सारदा की ज्योति-किरण की भीख लेनी ही होगी। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, 'अगर भारत अपना अभ्युत्थान चाहता है तो उसे श्रीरामकृष्ण की ओर मुड़ना ही पड़ेगा।' श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा भिन्न सत्ताएँ नहीं हैं। एक ही दो हो गये हैं, और दोनों ही एक हो गये हैं। अतः रामकृष्ण की ओर मुड़ने का अर्थ ही है माँ सारदा की ओर भी मुड़ना। मैं भारतवासियों से निवेदन करता हूँ कि वे श्रीरामकृष्ण—सारदा की ओर लौटें। उनसे प्रेरणा लेकर अपने जीवन का गठन करें। देश को स्वस्थ, सुसंस्कृत और दिव्य बनायें।

श्रीमाँ सारदा से मेरी प्रार्थना है कि वे हम पर अपनी कृपा-धार की वर्षा करें ताकि हमारा ताप-तप्त जीवन शीतलता, शांति और प्रेम से पूर्ण होकर धन्य हो जाय। जय श्रीरामकृष्ण! जय श्रीमाँ सारदा!!

निवेदन

विवेक शिखा के ग्राहकों से निवेदन है कि सन् १९८५ ई० के लिए विवेक शिखा का वार्षिक शुल्क २० रुपये यथाशीघ्र मनीआर्डर द्वारा भेज कर हमें अनुगृहीत करें।

आप का सहयोग ही हमारा सम्बल है।
आपके सहयोग की हमें अपेक्षा है।

—संपादक
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्,
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(विहार)

इसके बाद माँ को वैधव्य सहना पड़ा जो किसी भी नारी के लिए सबसे दारुण विपत्ति है। श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद माँ को चरम आर्थिक संकट से गुजरना पड़ा जब कभी-कभी चावल के साथ नमक को छोड़ और कुछ भी नहीं जुटता था।

जीवन के उत्तरार्द्ध में माँ को एक भिन्न प्रकार का उत्पीड़न सहना पड़ा। "पगली भाभी" के नाम से परिचित उनकी छोटी भौजाई, उसकी कन्या राधु, तथा माँ के अन्य छोटे भाई माँ पर ही आश्रित थे। परिवार के इन सदस्यों से माँ को न जाने कितने अत्याचार सहने पड़े। इसके बाद प्रारंभ हुआ नित्य-वर्धमान भक्तों का आगमन जिनकी सेवा-सुविधा के लिए माँ को दिन-रात परिश्रम करना पड़ता था। वे समय-बे-समय आ टपकते थे तथा उनकी इच्छा आकांक्षाएँ भी विचित्र हुआ करती थीं जिनकी पूर्ति के लिए माँ को अनेक कष्ट उठाने पड़ते थे। और सर्वोपरि असंख्य मंत्र-दीक्षित शिष्य-सन्तानों के जन्म-जन्मान्तर के पाप माँ को अपने ऊपर लेने पड़ते थे, जिससे उनके शरीर में ज्वाला होती थी तथा वह रोग-ग्रस्त हो जाता था। इन सभी शारीरिक एवं मानसिक कष्टों को सहर्ष सहन कर माँ ने अपनी ही उक्ति "सह्य (सहिष्णुता) के समान गुण नहीं, धैर्य के समान धन नहीं" को चरितार्थ किया था। श्री रामकृष्ण कहते थे "जे सय से रय, जे ना-सय से नाश-होय" अर्थात् जो सहन करता है वह जीवित रहता है, असहिष्णु नष्ट हो जाता है। माँ का जीवन इसी का प्रत्यक्ष दिग्दर्शक था।

माँ सारदा के चरित्र की दूसरी विशेषता है— दूसरे के दोषदर्शन का सर्वथा अभाव। वृन्दावन में श्री बांके बिहारी जी से उन्होंने कातर प्रार्थना की थी कि उनकी दोष-दृष्टि दूर कर दें। उनकी यह प्रार्थना पूर्णरूप से फलीभूत हुई थी। अमजद नामक एक मुसलमान बुनकर माँ के पास आया करता था। गरीबी के कारण बाध्य होकर वह चोरी डकैती भी करता था, जो माँ जानती थीं। बहुत दिनों की अनुपस्थिति के बाद एक बार आने पर जब उसने कहा कि गाय की चोरी करते वह पकड़ा गया था, माँ ने इस बात को अनसुनी कर दिया और उसका सन्तानवत् ही आदर-यत्न किया। एक बार उनकी संगिनी गोलाप माँ सेविका को किसी त्रुटि के लिये डांट रही थीं। माँ के कारण पूछने पर गोलाप माँ ने कहा, "तुम्हें कहने से क्या लाभ? तुम तो किसी के दोष ही नहीं देख सकतीं।" इस पर माँ ने बहुत तथ्यपूर्ण उत्तर दिया "मेरे दोष न देखने से कोई प्रलय नहीं हो जायेगा। मानव तो दोषपूर्ण है ही। उसके दोष क्या देखना!" माँ का अन्तिम ही नहीं, बल्कि सर्वोच्च उपदेश भी यही है, "अगर शान्ति चाहते हो तो किसी के दोष न देखो। कोई पराया नहीं है। सभी को अपना बना लेना सीखो।"

माँ की तीसरी विशेषता है, उनकी पूर्ण निरहंकारिता, युगावतार श्रीरामकृष्ण द्वारा देवी के रूप में पूजित होना, विश्वविजयी स्वामी विवेकानन्द द्वारा उच्चतम सम्मान प्राप्त करना; असंख्य नर-नारियों के गुरु-पद पर आसीन होना, तथा सैंकड़ों के मुँह से रात-दिन 'तुम लक्ष्मी हो, तुम जगदम्बा हो,' इत्यादि सुनना-इन सब को हजम कर पाना मानव की सामर्थ्य के बाहर है। इतना सब होते हुए भी माँ कहती थीं कि मैं तो राम मुखर्जी, की कन्या, एक सामान्य ग्रामीण महिला हूँ। मुझे तो अपने में कोई विशेषता दिखाई नहीं देती। एक भक्त महिला ने कहा है "जीव मात्र अहंकार से भरा है। माँ का ईश्वरत्व इसी में है कि उनमें अहंकार बिन्दु मात्र भी नहीं है।"

माँ सारदा की चौथी विशेषता थी उनकी अप्रतिम पवित्रता। दक्षिणेश्वर में चाँदनी रात में चन्द्रमा को देख कर वे भगवान से रो-रोकर प्रार्थना किया करती थीं, "प्रभु चन्द्रमा में भी कलंक है, मेरे चरित्र में किसी भी प्रकार का दाग न रहे!" माँ सारदा में काम का लेश मात्र भी नहीं था माँ की पवित्रता की साक्ष्य स्वयं श्रीरामकृष्ण देते हुए कहते हैं, "यदि वह इतनी शुद्ध और पवित्र न होती और विवेक खोकर उस समय मुझ पर जबरदस्ती करती तो संयम का बांध टूट कर मुझमें

देह-बुद्धि का उदय होता या नहीं, यह कौन कह सकता है ?"

माँ को राधू तथा अपने भाइयों के संसार में अत्यधिक आसक्त देख कर एक बार माँ की एक संगिनी को माँ के स्वरूप के सम्बन्ध में संशय हुआ था। एक दिन गंगा के किनार वे खड़ी थीं। अचानक उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण उन्हें गंगा में बह रहे एक नवजात शिशु की लाश दिखाकर कह रहे हैं कि जिस प्रकार इससे (शव से) गंगा अपवित्र नहीं होती, उसी प्रकार माँ को समझना। (अर्थात् माँ गंगा के समान पवित्र हैं जिन्हें संसारासक्ति अपवित्र नहीं कर सकती)। माँ पवित्रता स्वरूपिणी थीं।

"पवित्रं चरितं यस्याः पवित्रं जीवनं तथा।
पवित्रता स्वरूपिण्यै तस्मै कूर्मो नमो नमः ॥

वस्तुतः यदि हम माँ के गुणों को खोजने की चेष्टा करें तो उन्हें किसी भी प्रकार अपूर्ण नहीं पायेंगे। गीता के द्वादश अध्याय में वर्णित श्रेष्ठभक्त के समस्त गुण माँ में विद्यमान थे। ज्ञान, कर्म भक्ति, संयम, क्षमा, करुणा, स्नेह, त्याग, सभी माँ में थे। सभी दृष्टि से वे एक परिपूर्ण आदर्श प्रस्तुत करती हैं। इस आदर्श पर स्त्री-पुरुष गृह-संन्यासी, नवीन-पुरातन, सभी का समान अधिकार है; जो चाहे उनसे अपने लिए उपयोगी वस्तु ग्रहण कर अपने जीवन को धन्य बना सकता है। गृहस्थ इनके अनुसरण से अपने पारिवारिक जीवन को, तथा संन्यासी अपने संघ जीवन को मधुमय बना सकते हैं।

लेकिन माँ अपने इस समग्र गुण समूह को गोपनीयता और लज्जाशीलता के एक अभेद्य आवरण से ढंक रखती थीं, जिसके भीतर से प्रवाहित होता था, और आज भी होता है, एक स्नेहमय, शान्तिदायक नीरव प्रवाह, प्रेमामृत का प्रबल प्रवाह, जो अनायास ही प्राणों को अपनी ओर खींच लेता है, मन पर आधिपत्य स्थापित कर लेता है तथा अनजाने ही चरित्र को रूपान्तरित करता है। अन्तर का स्पर्श करने वाली इस नीरव शान्त स्नेह-धारा की ओर इंगित करके ही भगिनी निवेदिता ने माँ को एक पत्र में लिखा था;

"मुझे स्मरण हो रहा है कि एक दिन ठाकुर की संध्यारति के समय मैं मूर्खतापूर्वक तुम्हारे कमरे में बैठकर ध्यान करने का प्रयत्न कर रही थी। तब मैंने यह क्यों नहीं समझा कि तुम्हारे प्रिय चरण तले छोटे शिशु सा बना रहना ही पर्याप्त हैं। माँ, तुम प्रेममय' हो, किन्तु वह प्रेम हमारे सांसारिक प्रेम की तरह उद्दाम या उत्तेजनापूर्ण नहीं है। वह केवल एक शान्त-शान्ति है जो सर्व-कल्याण करता है—किसी का अमंगल नहीं करता।

प्रिय माँ, मेरी इच्छा होती है तुम्हें एक सुन्दर वन्दना गीत अथवा प्रार्थना भेजूं किन्तु तुम्हारे सन्दर्भ में लगता है कि वह बहुत कोलाहल पूर्ण होगा। सचमुच तुम प्रभु की अत्याश्चर्यमय वस्तु हो, और शिशु की तरह आनन्द मनाने के अतिरिक्त तुम्हारे पास नीरव रहना ही उचित है। भगवान की समस्त विस्मयकारी वस्तुएँ अत्यन्त नीरव हैं, जो अनजाने में हमारे जीवन में प्रवेश करती हैं—सूर्य-किरण, पवन, उपवन, गंगा का माधुर्य—ये सभी तुम्हारी तरह ही हैं।"

माँ के जीवन, उनकी वाणी तथा उनके चित्र से एक नीरव प्रेमाकृति का, स्नेह व शान्ति का प्रवाह प्रवाहित होता है जो अपने आप हृदय-द्वार पर उपस्थित होता है। हृदय-कपाट उन्मोचित करते ही हम उसका स्पर्श पा सकते हैं। श्रीरामकृष्ण के त्यागी सन्तान-गण, स्वामी-विवेकानन्दजी, स्वामी ब्रह्मानन्द जी, स्वामी प्रेमानन्द जी, आदि जितने इसे पहचाना तथा अनुभव किया था, वे कभी माँ का प्रचार नहीं करते थे। वे माँ की पूजा तथा उन्हें प्रणाम करके ही अपने को कृतार्थ अनुभव करते थे। अनन्त शक्तिमयी माँ जगदम्बा ने इस करुणामूर्त्ति में आविर्भूत होकर हमें उनकी चरण वन्दना एवं पूजा करने का अवसर प्रदान किया है, यही उनका सबसे बड़ा अवदान है। माँ के चरणों में प्रणाम कर अपने श्रद्धा-सुमन उनके चरणों में निवेदन कर, बालक के समान उनके सामने बैठ कर हम अपने जीवन को धन्य बनायें।

□

मातृ-अभिषेक

—ब्रह्मचारी वरदाचैतन्य
रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, पुरुलिया

रामकृष्ण कवि थे। सारदा उनकी कविता।
रामकृष्ण शिल्पी थे। सारदा उनकी शिल्प-सुषमा।

सूक्ष्म यंत्र के द्वारा शिल्पी ने कठोर पाषाण के हृदय में अपने हृदय के प्रेम को मूर्तिमंत कर दिया। मानस का स्वप्न संगमरमर के वक्ष में वन्दी हो गया, शिल्पी के प्रेम के आकर्षण से।

सूर्य-रश्मि के कर-स्पर्श से मायामय पृथ्वी रूप-रस से भर जाती है और एक मनोरम भंगिमा के साथ आनन्द से प्रकाशित हो उठती है। माँ थी सुप्त, शान्त, समाहित और अपने अवगुन्ठन के अन्तराल में गुप्त; प्रभात के आलोक में धीरे-धीरे उन्मोचित, उद्भासित होने वाली। रूपकथा का राजपुत्र अपने अन्तरंग के अश्व की पीठ पर चढ़कर आता है निद्रिता राजकन्या की नींद तोड़ने। उसके हाथ के सोने की लकड़ी के स्पर्श से राजकुमारी जग जाती है। निद्रित स्वप्नपुरी से प्राणों का स्पन्दन जगता है।

रामकृष्ण के स्पर्श से मातृशक्ति उद्बोधिता हुई हैं। उस शक्ति के 'उन्मेष मंत्र से दिग्दिगन्त व्यापिनी प्रतिध्वनि जागृत हुई।' यह तो स्वप्न नहीं है, न ही है अलोक-कल्पना। यह तो विगत दिनों की सच्ची घटना है।

"ब्रह्म और शक्ति जैसे आग और उसकी दाहिका शक्ति हैं।"—श्रीरामकृष्ण ने कहा है। शक्ति की सहायता से विलग ब्रह्म निष्क्रिय है। ब्रह्म—शास्त्र की दृष्टि से तो वह है 'निष्कलं, निष्क्रियं, शान्तं, निरवद्यम् निरञ्जनम्।' वह है सर्वोपाधि विवर्जित। वही निरुपाधिकब्रह्म ही शक्ति से समन्वित होकर प्रकाशित होता है, इस मायामय जगत् के रूप में।

श्रीरामकृष्ण थे इसी ब्रह्म और शक्ति के समन्वित फल। रामकृष्ण और सारदा—एक ही दोनों थे और दोनों ही एक थे। एक को छोड़कर दूसरे को जानने का उपाय नहीं है। जैसे 'हाँड़ी और उसके मुंह का ढक्कन'—उपमा रामकृष्ण की है।

'वह मेरी शक्ति है'—सारदा के सम्बन्ध में यह श्रीरामकृष्ण की सांकेतिक उक्ति है। 'उसका नाम है सारदा, वह सरस्वती है। वह ज्ञानदायिनी है, वह क्या जो-सो है?—श्रीरामकृष्ण की प्रज्ञा-दृष्टि ने अवगुण्ठन के अंतराल में छिपी सारदा के वास्तविक रूप को संसार के समक्ष प्रकाशित किया था। महामाया जब स्वयं ही अपने स्वरूप पर आवरण की रचना करती हैं तब उन्हें समझने का साध्य क्या है? श्रीरामकृष्ण तो मायाधीश थे—वे मायाधीन तो थे नहीं—इसीसे किशोरावस्था में ही अपनी शक्ति की ओर निर्दिष्ट किया था—सारदा की ओर—जयरामबाटी ग्राम की पाँच वर्षों की छोटी 'सारू' की ओर।

'सारू'—सारदा, बंगाल के शान्त, निरुद्विग्न ग्राम्य जीवन के स्निग्ध छायामय घर के कोने की नितान्त साधारण एक ग्राम्यबाला। माँ-बाप के स्नेह की दुलारी अपनी इच्छा के अनुसार, अपने आनन्द के साथ बड़ी हुई—इस विशाल विश्व के एकान्त में, अविख्यात एक छोटे गाँव में। वह नहीं जानती थी अपने छोटे गांव के बाहर की दुनिया को, वह नहीं जानती थी अगणित आर्त मनुष्यों के व्याकुल हाहाकार को। किन्तु इससे

क्या ? छोटी सारदा का हृदय विशाल था। वह हृदय स्पन्दित होता था संसार के सीमाहीन दुःखों के सूक्ष्म तरंगाघातों से। घास की फुनगी पर पड़े एक लघु शिशिर-बिन्दु में क्या असीम, अनन्त, सुनील आकाश प्रतिफलित नहीं होता ! क्षुद्र शंख के गंभीर सुर में क्या विशाल समुद्र का दुरन्त आह्वान प्रतिध्वनित नहीं होता ! पाँच वर्षों की सारदा की गंभीर अनुभूति ने विश्व की पुंजीभूत वेदना की तीक्ष्ण तरंगों को ग्रहण कर लिया। सन्तान के प्रति परम ममता से मातृ स्नेह की पीयूषधारा स्वतः प्रवाहित हो उठी।

जयरामबाटी गाँव के फ्रेम में जड़ी एक पूरी छवि आँखों के सामने उभर आती है। उस सीधी-सादी आपाततुच्छ छवि के अपार सौन्दर्य की तुलना करने पर प्रतीत होता है जैसे रैफेल द्वारा चित्रित म्याजोना की अपूर्व शिल्प-कीर्ति हो ! दुर्भिक्ष के कराल ग्रास में दिशाहारा अनेक भूखे प्राणी मुट्ठीभर दाने की आशा से सारदा के पिता रामचन्द्र मुखर्जी के गृहांगन में उपस्थित हुए हैं। क्षुधार्त, क्लान्त मनुष्यों के भूखे मुखमंडलों को देखकर गृहस्वामी विचलित हो उठे हैं। उदार हृदय से उन्होंने खोल दिया है अपने संचित धान का गोला। बैठे हैं भोजन-स्थल पर। उष्ण, सुवासित खिचड़ी क्षुधातुर, अधैर्य मनुष्यों के पत्तलों पर परास दी जाती है। पाँच वर्षों की 'सारू' उन लोगों की उग्र व्याकुलता देखकर तुरत ले आती है छोटा ताड़ का पंखा। दो शीर्ण हाथों से पंखा पकड़कर प्रबल शक्ति से हवा करती है, तप्त खिचड़ी को ठंढ़ा करने की चेष्टा करती है। स्नेहमयी मातृमूर्ति का वह एक अपूर्व उन्मोचन था। विश्व मातृत्व की प्रतीक सारदा ने उस शैशव में ही इंगित किया था अपने भावी काल के जगद्धात्री रूप की ओर।

कवि वे होते हैं जो क्रान्तदर्शी होते है। कवि यदि क्रान्तदर्शी होते हैं तब उनके द्वारा रचित महाकाव्य महासत्य का ही छन्दमय रूप होता है। ईश्वर कवि हैं। और उनके द्वारा रचित यह सृष्टि महाकाव्य है।

कामारपुकुर के गदाधर चट्टोपाध्याय, किशोर गदाई, अपने स्वप्निल युगल नेत्रों को खोल अवाक्, विस्मय भाव से महाकवि के इस जगत्-काव्य को देखते हैं। अपार विस्मय से, आनन्दपूर्ण पुलक से, भावतन्मयता से, अपनी चेतना खो बैठते हैं। अपने मन से मिट्टी की एक देवी-प्रतिमा की रचना करते हैं। उसे जो देखता है, वही अपरूप शिल्प नैपुण्य को देख अवाक् विस्मय हो जाता है। मिट्टी की प्रतिमा लेकर उसे अधिक दिनों तक निश्चय ही खेलना नहीं पड़ा। यौवन के प्रारंभ में ही उसके हाथों में आयी एक जीवन्त प्रतिमा। जयरामबाटी के रामचन्द्र मुखोपाध्याय की कन्या सारदा के साथ शुभ परिणय हुआ क्षुदिराम चट्टोपाध्याय के पुत्र गदाधर चट्टोपाध्याय का। किन्तु इस विवाह ने ईश्वर की खोज में व्याकुल गदाधर को भोगमुखी नहीं किया। विवाह बन्धन का कारण नहीं बना। सारदा ने भी अपने स्वामी को भोग के पथ पर आकर्षित नहीं किया। दो समानान्तर सरल रेखाओं की भाँति परस्पर दोनों महाअसीम की ओर अभिमुख होकर अग्रसर हुए।

'क्या जी, तुम क्या मुझे संसार-पथ पर खींच लेने के लिए आयी हो ?'—दक्षिणेश्वर की साधनभूमि पर एक निर्जन रात में एक दिव्य दम्पति का गूढ़ संलाप। 'नहीं, मैं तुम्हें संसार-पथ पर क्यों खींचूँगी ? तुम्हारे इष्टपथ पर सहायता करने आयी हूँ।'—पत्नी का दृढ़ और संयत उत्तर। भविष्य में श्रीरामकृष्ण इस दिन का स्मरण कर कहते हैं—"वह यदि इतनी अच्छी नहीं होती, आत्महारा होकर मुझपर आक्रमण करती तो (मेरे) संयम का भाव टूटकर मुझमें देह-बुद्धि आती कि नहीं, कौन कह सकता है ? विवाह के बाद माँ (जगदम्बा) को व्याकुल होकर पकड़ा था, 'माँ, मेरी पत्नी के भीतर से काम-भाव एकबार ही दूर कर दो।' उसके साथ एकत्र वास कर समझा था कि माँ ने उस बात को सचमुच ही सुना था।" यह हुआ दोनों पुरुष और नारी का अद्भुत वैवाहिक सम्बन्ध। उन दोनों का भले ही अवतार हुआ हो, भले ही वे दोनों अतिमानविक स्तर के हों, किन्तु यह तो अपार्थिव संसार के क्षेत्र की

बात है। पार्थिव जगत में, रक्त-मांस के शरीर में वे दोनों आदि और अकृत्रिम मानव-मानवी के वंशधर थे। शरीर धारण करने पर ही टैक्स देना होता है। वहाँ भी है काम, क्रोध, मोह आदि रिपुओं का दुर्दम अत्याचार।

श्रीरामकृष्ण श्रीमारदा को अपनी योग्य सहधर्मिणी बनाने के लिए यत्नपूर्वक प्रयास करने लगे। संसार और ईश्वर दोनों अलग नहीं हैं, इसे प्रमाणित किया श्रीरामकृष्ण ने। विवाह करके, स्त्री को लेकर ईश्वर-लाभ नहीं किया जा सकता—इसका अपवाद क्या उनके परवर्तीकाल में कोई दे सकेगा? पति के योग्य दायित्व को लेकर श्रीरामकृष्ण ने सारदा को अपने मन के अनुकूल बनाया। सांसारिक छोटी-मोटी बातों के साथ-साथ वे उन्हें धर्म के गूढ़ तत्वों की शिक्षा देते थे। श्रीमाँ सारदा ने बाद में भक्तों से अपने दक्षिणेश्वर-वास के समय स्वामी के सान्निध्य में अपूर्व शिक्षा-ग्रहण की बात बतायी थी।

साधक श्रीरामकृष्ण ने भवतारिणी की प्रस्तर मूर्ति को जाग्रत किया था अपनी आकुल आर्तता से। इधर अपने घर में विवाहिता स्त्री क्या उपेक्षिता थीं? उन्हें वे किस दृष्टि से देखते थे? सारदा के साथ श्रीरामकृष्ण का क्या सम्बन्ध था? क्या वह शुद्ध स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध था या कि गुरु-शिष्य का? अथवा क्या उनकी भूमिका पत्नी के प्रति उदासीन रहकर ईश्वर-संधानी साधक की थी? नहीं, इनमें से कोई भी नहीं। उस दिव्य सम्बन्ध की धारणा मर्त्यजीव की भोगोन्मत्त मलिन बुद्धि से सम्भव नहीं है। इसी से अबूझ तथ्य को उन्होंने स्वयं समझा दिया है। रामकृष्ण-सारदा के रहस्यमय सम्बन्ध की ओर उन्होंने स्वयं इंगित किया है। एक रात अपने पति के पाँव दबाते समय लीलामयी महामाया ने पति से यह कूट प्रश्न किया—"मुझे आप किस दृष्टि से देखते हैं?" रामकृष्ण का चकित उत्तर था—"जो माँ मन्दिर में हैं, उन्होंने ही इस शरीर को जन्म दिया है और अभी नहबतखाने में निवास कर रही हैं (श्रीरामकृष्ण की माँ चन्द्रामणि देवी उन दिनों दक्षिणेश्वर में नहबत घर में रहती थीं) और वे ही अभी मेरे पाँव दबा रही हैं। साक्षात् आनन्दमयी के रूप में तुम्हें सचमुच ही सदा-सर्वदा देखता हूँ।" गुरु नहीं, शिष्या नहीं; पति नहीं, पत्नी नहीं; सारदा के साथ उनका सम्बन्ध माता और पुत्र का, साध्य और साधक का था!

दक्षिणेश्वर के शिल्प-गृह में रामकृष्ण के द्वारा प्रतिमा निर्माण का कार्य प्रायः समाप्त हो गया। सारदा की मूर्ति रामकृष्ण के स्नेह-स्पर्श से धीरे-धीरे सर्वाङ्ग सुन्दर हो उठी है। अथवा यह कहा जाय कि रामकृष्ण के कर-स्पर्श से निमीलित पद्म-कलिका धीरे-धीरे प्रस्फुटित होती है। उसका खिल उठना सार्थक होगा, धन्य होगा, जब वह देवता के चरणों तक पहुँचायी जायगी।

प्रतिमा पहले इकहरी होती है, फिर दुबारे उस पर मिट्टी भरी जाती है। फिर उसे मन की माधुरी से रंगा जाता है एवं सब के अंत में प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा करने की बारी आती है। प्रतिमा का देवीत्व-बोधन नहीं होने पर उसकी पूजा कैसे की जा सकती है? सारदा-मूर्ति में पूर्ण मातृसत्ता का उद्बोधन करने, मातृ-रूपा सारदा को विश्ववासियों के निमित्त उत्सर्ग करने के लिए श्रीरामकृष्ण ने स्वयं पुरोहित के आसन को अलंकृत किया। एक फलहारिणी पूजा की पुण्य तिथि को पूर्ण युवती सारदा को श्री श्री जगदम्बा की षोडशी मूर्ति के रूप में कल्पना कर श्रीरामकृष्ण ने पूजा करने का आयोजन किया। पूजा की पादपीठ पर देवी सारदा के लिए पूजा निवेदन करने के हेतु श्रीरामकृष्ण के कंठ से प्रार्थनामंत्र ध्वनित हुआ—

"हे बाले, हे सर्वशक्ति अधीश्वरी माते: त्रिपुरसुन्दरी, सिद्धि का द्वार उन्मुक्त करो, इनके (श्री माँ के) शरीर-मन को पवित्र कर, इनके भीतर आविर्भूत होकर सर्व-कल्याण साधन करो।" तदुपरांत पूजा के समापन के अन्त में श्रीरामकृष्ण ने सुदीर्घ बारह वर्षों की साधना से अर्जित समस्त तपस्याओं के फल देवी के पादपद्मों में समर्पित किया। इसके बाद अपने, जप की माला तक

देवी के चरणों में विसर्जितकर प्रणाम-मंत्र उच्चारित किया—"हे सर्वमंगलों की मंगलस्वरूपिणी ! हे सर्वकर्म निष्पन्नकारिणि ! हे शरणदायिनि ! त्रिनयने ! शिवगेहिनि ! गौरि ! हे नारायणि ! तुम्हें प्रणाम है, मैं तुमको प्रणाम करता हूँ।"

"मातृभाव की साधना की अंतिम बात।"—कहा है श्रीरामकृष्ण ने। इसी से तो उन्होंने स्त्रीगुरु ग्रहण किया, इसी से उन्होंने नारी-भाव की साधना की, इसी से उन्होंने मातृभाव का प्रचार किया। श्रीमाँसारदा से परवर्ती काल में एक भक्त ने प्रश्न किया था,—"माँ, अन्यान्य अवतारी परमपुरुषों ने अपनी अपनी शक्ति के बाद भी अपनी देहरक्षा की थी, किन्तु इस बार आपको रखकर ठाकुर पहले ही क्यों चले गये ?" माँ ने उत्तर दिया—"बच्चा, जानते तो हो, ठाकुर का संसार के प्रत्येक के ऊपर मातृभाव था। उसी मातृभाव का संसार में विकास करने के लिए इस बार मुझे रख गये हैं।" इसी से जिस सारदा के शैशव में प्रसन्न-सुन्दर मातृ-मूर्त्ति का अकुंठ प्रकाश हम देखते हैं, कलान्तर में देव-शिल्पी के अलौकिक स्पर्श से उसी मूर्त्ति में हम जगज्जननी के रूप का पूर्ण विकास देखते हैं। सारदा औरों की भाँति नारी नहीं हैं, वे किसी की पुत्री या वधू भी नहीं हैं, न वे किसी की गुरु या शिष्या हैं; वे हैं केवल माँ। माँ हैं वे सब की। पशुओं की, पक्षियों की भी जैसे वे माँ हैं, इस विश्व की चेतन, अचेतन समस्त वस्तुओं की माँ हैं वे। इस विशाल ब्रह्माण्ड की प्रसविणी तो आद्याशक्ति हैं। और सारदा स्वयं वही आद्यशक्ति ब्रह्मस्वरूपिणी हैं। इस महाशक्ति के स्वरूप की कुछ उपलब्धि स्वामी विवेकानन्द ने की थी। संसार के समक्ष उन्होंने निर्द्वन्द्व घोषणा की—"माँ क्या हैं, उनका महत्व तुमलोग नहीं समझ सके हो—अभी तुममें से कोई भी नहीं समझ सके हो। किन्तु धीरे-धीरे तुमलोग समझ पाओगे। शक्ति के बिना संसार का उद्धार नहीं हो सकता। ... ...उसी महाशक्ति को भारत में पुनः जाग्रत करने के लिए माँ का जन्म हुआ है, उनका अवलम्बन लेकर संसार में पुनः गार्गी मैत्रेयी आदि जन्म लेंगी।"

ईश्वर की मातृरूप में आराधना हमलोग महाशक्ति का विकास करने के लिए करते हैं। श्रीरामकृष्ण ने इसीलिए इस मातृमूर्ति का गठन अपने हाथों किया था। उस स्वरचित प्रतिमा में प्राण प्रतिष्ठाकर उसे विश्व-मंगल के लिए उत्सर्ग कर दिया था। अपने भावों की परिपुष्टि के लिए उन्होंने सारदा को लौकिक शिक्षा दी थी, आध्यात्मिक दीक्षा दी थी। पत्नी रूप में उन्हें गार्हस्थ्य धर्म की शिक्षा दी थी और फिर उनकी ही पूजा की थी मातृ रूप में। उन्हें कामज संतान नहीं दी, किन्तु दी थी अनन्त कोटि मानस संतान। सारदा के मातृ-बुभुक्षित प्राणों में एक बार संतान की आकांक्षा उत्पन्न हुई थी। अंतर्यामी श्रीरामकृष्ण ने आश्वासन देते हुए कहा था सारदा को—"इतने लड़के तुम्हें माँ कहकर पुकारेंगे कि संभालना मुश्किल हो जायगा।" वह भविष्यवाणी कितनी सच थी इसका आजकल के अगणित मातृ-भक्त ही प्रमाण हैं।

एक नये युगचक्र के प्रवर्तन के लिए, अपने भावों की पुष्टि के लिए श्रीरामकृष्ण को सारदा का प्रयोजन था। इसीसे सारदा में पूर्ण मातृ-सत्व का जागरण होने पर उनके श्रीहस्तों में उन्होंने जगत के कल्याण का भार धर दिया था। किन्तु मायास्वरूपिणी सारदा ने इतनी सहजता से भार ग्रहण नहीं किया था। अपने घूँघट के पट में छिपी रहना ही उनकी लीला थी उनका स्वभाव था। इसी से एक दिन याचना के स्वर में श्रीरामकृष्ण ने कहा था—"हाँ जी, क्या तुम कुछ करोगी नहीं ? यह ही (अपनी देह की ओर दिखाकर) सब करेगा ?" लीलामयी का असहाय प्रश्न था—"मैं स्त्री हूँ, मैं क्या कर सकूँगी ? ठाकुर ने तभी उत्तर दिया था, '-नहीं, नहीं, तुम्हें काफी कुछ करना होगा।" सारदा को सजग करते हुए कहा था, "क्या केवल मेरा ही दायित्व है ? तुम्हारा भी दायित्व है।" सारदा ने वह दायित्व स्वीकार किया था। ग्रहण किया था अगणित स्नेह

बुभुक्षु संतानों का शर्तहीन दायित्व। वहाँ भेद-विचार नहीं था। न ही ऊँच-नीच का प्रश्न। केवल माँ कहते हुए आकर खड़े हो जाने से ही हो गया। "माँ कहते हुए आकर खड़े हो जाने वाले को लौटा नहीं पाऊँगी।" —स्वयं ही यह आश्वासन दिया था।

गिरिकन्या पार्वती ने हजार वर्षों तक हिमालय के दुर्गम वक्ष पर कठिन तपस्या की थी पति रूप में महेश्वर को प्राप्त करने के लिए। आत्म भोला श्मशान-चारी शिव ने तापसी पार्वती की ऐकान्तिक निष्ठा से तुष्ट होकर उन्हें पत्नी रूप में ग्रहण किया था। शिव और शक्ति! विश्व के कल्याण-कल्प के लिए दोनों सम्मिलित हुए थे। वह धारा ही युग-युगान्तर से वहती आ रही है। कभी वे आये हैं रामचन्द्र के रूप में। अपने साथ लाये हैं अपनी शक्ति अपापविद्धा सीता को। कभी आये हैं श्रीकृष्ण के रूप में। साथ लाये हैं ह्लादिनी शक्ति राधा को। और इस युग में वे ही आते हैं श्रीरामकृष्ण के रूप में शक्तिरूपिणी सारदा को साथ लेकर। यह महामाया सारदा जब अपनी माया के प्रभाव से अवगुण्ठिता थी, अपनी शक्ति के प्रकाश में कुंठिता थी, तब श्रीरामकृष्ण ने एक महायुग के प्रवर्तन के लिए इस सुप्त गुप्त शक्ति को उन्मोचित किया। एक नारी के अन्तःकरण में सुप्त विश्वप्लावनकारी मातृसत्व का पूर्ण स्फुरण हुआ, विश्ववासी उस मातृस्नेह की पीयूषधारा से परितृप्त हुए, पुष्ट हुए। इस जगद्धात्री रूप का, इस महाशक्ति का सम्पूर्ण प्रकाश होना अभी भी बाकी है। आज उसकी सूचना मात्र से ही सारा संसार स्तंभित है। इस महाशक्ति की 'पूर्णावस्था' मानस-नेत्र से ही कल्पनीय है। 'बुद्धिमान समझ लें'!

श्रीमती इन्दिरा गाँधी

गत ३१ अक्टूबर को भारत की गरिमामयी प्रधान मंत्री इंदिरा गाँधी की, नयी दिल्ली स्थित उनके निवास-स्थल में उनके ही दो अंग-रक्षकों ने गोलियों की बौछाड़ कर कायरतापूर्ण, क्रूर एवं निर्मम हत्या कर दी। श्री मती गांधी का रामकृष्ण मिशन आश्रम से अपने शैशव काल से ही आत्मीय संबंध था जो अंत तक बना रहा।

'विवेक शिखा' परिवार उनकी आत्मा की अक्षय शान्ति के लिए भगवान श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्द जी से प्रार्थना करता है।

नारद-भक्ति-सूत्र

—श्रीमत स्वामी वेदान्तानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

षष्ठ अनुवाक

असत्संग-त्याग और माया मुक्ति

दुःसङ्गः सर्वथैव त्याज्यः ॥४३॥

दुःसङ्गः (असत्सङ्ग) सर्वथा एव (सर्व प्रकार से) त्याज्यः (परित्याग करना उचित है) ।।४३

असत्सङ्ग का सर्व प्रकार से त्याग करना उचित है।।४३

महत्संग जो भक्ति की प्राप्ति के लिए अपरिहार्य सहायक है, उसके विषय में कहा जा चुका है। यहाँ प्रतिबन्धक समूहों का उल्लेखकर साधक को सावधान किया गया है।

सङ्ग-त्याग कर रहना बड़ा कठिन है, विशेषकर साधना की प्रथम अवस्था में। किन्तु सत्सङ्ग सर्वदा एवं सर्वत्र सुलभ नहीं होता। संसार में मन के अनुकूल मनुष्य अधिक नहीं मिलते। भगवान के विषय में कितने व्यक्ति आनन्द का अनुभव करते हैं? अधिकांश लोग तो तुच्छ विषय-भोग को लेकर ही मजे में हैं। बिना विचारे सबके सथ मिलने जुलने से बड़ा अहित होता है। भक्ति की वृद्धि के लिए, अपने भाव को बनाये रखने के लिए देख-सुनकर लोगों के साथ मिलना होगा। असतसङ्ग से केवल भक्ति की क्षति नहीं होती—यह असत्सङ्ग जीवन का सम्पूर्ण सर्वनाश कर देता है। इसीसे दुर्जन को सर्वदा अलग ही छोड़ देना होगा।

सङ्ग कहने का तात्पर्य केवल मनुष्य का सङ्ग नहीं है। जो सब वस्तुएँ या स्थान अन्तःकरण में भोग-वासना को उत्पन्न करते हैं, मन को निम्नगामी करते हैं, उन सब को सावधानीपूर्वक दूर ही छोड़ देना होगा।

आँखों से असत् दृश्य नहीं देखूँगा, कानों से असत् बातें नहीं सुनूँगा, असत् ग्रंथों का पाठ नहीं करूँगा, भोग-लालसा की वृद्धि करनेवाली वस्तु का आस्वाद या स्पर्श नहीं करूँगा—इस प्रकार का मनोभाव लेकर जो कुछ मन को विषयमुखी या ईश्वर से विमुख करें, उन सब को छोड़ने पर ही दुःसङ्ग का सर्व प्रकार से त्याग होता है।

असत्सङ्ग क्यों त्याज्य है, इसके सम्बन्ध में कपिलदेव कहते हैं—

यद्य सद्भिः पथ पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः।
आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशतिपूर्ववत्।।
सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्री ह्रीर्यशः क्षमा।
शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद्याति संक्षयम्।।
तेष्वशान्तेषु मूढ़ेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु।
सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीड़ामृगेषु च।।
भा० ३।३१।३२-३४

'जो व्यक्ति शिश्नोदरपरायण (कामिनीकांचन में आसक्त) पुरुष के साथ वास कर उसके ही आचरण का अनुसरण करता है उसकी गति अन्धकारमय नरक में होती है। इस प्रकार के असत् व्यक्ति के साथ वास करने से सत्य, शौच, दया, मौन, बुद्धि, श्री, ह्री, यशः, क्षमा, शम-दम आदि सब सद्गुणों का क्षय हो जाता है। इसलिए इस तरह के मूढ़, अशान्त, देहान्तवादी, स्त्रीजित, करुणा के पात्र व्यक्तियों के साथ वास नहीं करना।'

"ईश्वर सभी जीवों में हैं। साधु-असाधु, भक्त-

अभक्त, वस्तुतः सब के हृदय में ईश्वर निवास करते हैं, किन्तु बुरे लोगों का संग करना उचित नहीं है। किसी के साथ केवल मुँह से मात्र बातचीत करने से ही काम चल जाता है, और किसी के साथ वह भी नहीं चलता। ऐसे लोगों से अलग ही रहना होता है। उनलोगों को दूर से ही प्रणाम करना।...सच ही बाघ के भीतर भी ईश्वर हैं, किन्तु बाघ का आलिंगन करना उचित नहीं समझा जाता है।"

"शास्त्र में है कि जल नारायण है। किन्तु सभी जल का पान नहीं किया जाता। किसी जल से देवता की सेवा होती है, फिर किसी जल से पाँव धोया, कपड़ा फींचा और वर्तन मला जाता है, किन्तु उससे मुँह धोना उसे पीना या उससे देवता की सेवा नहीं की जाती। उसी तरह सभी जगहों में ईश्वर हैं, किन्तु किसी जगह पर जाया जाता है, और किसी जगह से दूर से ही भाग जाना पड़ता है।"

"जो लोग स्वयं कभी धर्म-चर्चा नहीं करते, दूसरे को भी ध्यान-पूजा करते देखने पर हँसी और व्यंग्य करते, धर्म और धार्मिक लोगों की निन्दा करते, वैसे लोगों का सङ्ग साधना की अवस्था में कभी भी नहीं करना। उनलोगों के निकट से बिल्कुल दूर रहना।"

'जिस प्रकार की सङ्गति में रहोगे, उसी प्रकार का स्वभाव हो जायगा। इसी से चित्र में भी दोष है।

असत् व्यक्तियों की सङ्गति अच्छी नहीं। उनलोगों के निकट से दूर रहना होगा, देह बचाकर चलना होगा।"

काम-क्रोध-मोह-स्मृतिभ्रंश-बुद्धिनाश-सर्वनाशकारणत्वात् ॥४४॥

काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश और सर्वनाश का कारण होने से दुःसङ्ग का सर्वथा परित्याग करना चाहिए।। ४४

असत्सङ्ग के फलस्वरूप कैसा सर्वनाश होता है, इसके विषय में यहाँ नारद कहते हैं। असत्सङ्ग होने से हर तरह से अकल्याण एवं सर्वनाश का होना भी संभव है। कुसङ्ग के प्रभाव से भोगवासना की वृद्धि होती है; असत् व्यक्ति की बातचीत और आचरण मन को विषय लोलुप बना कर अधःपतन के गहन गह्वर में क्रमशः खींच ले जाते हैं। विषय और विषयी के संसर्ग में रहने पर मन किस प्रकार धीरे-धीरे नीचे की ओर जाता है, इस सम्बन्ध में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

'विषय-चिन्तन करते-करते उससे आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति से काम का उदय होता है; कामना की पूर्ति के मार्ग में किसी प्रकार की बाधा के उपस्थित होने पर क्रोध की उत्पत्ति होती है। क्रोध से मोह का जन्म होता है; मोह के आने पर स्मृति नष्ट होती है, गुरु-वचन और शास्त्रों के उपदेशों का स्मरण नहीं रह पाता; स्मृतिभ्रंश होने पर बुद्धिनाश होता है और बुद्धिनाश होने पर सर्वनाश के लिए और कुछ बचा नहीं रह पाता।'

तरङ्गायिता अपीमे संगात् समुद्रायन्ति ॥४५॥

इमे (ये काम-क्रोध आदि) **तरङ्गायिताः अपि** (पहले तरङ्ग की भाँति सामान्य रहने पर भी) **सङ्गात्** (असत् के सङ्ग के फलस्वरूप) **समुद्रायन्ति** (समुद्र की तरह प्रबल हो जाते हैं)।। ४५

काम-क्रोध आदि जो सब रिपु हृदय में लघु तरङ्गों के आकार में उपस्थित रहते हैं, वे सब असत्सङ्ग के परिणामस्वरूप समुद्र की भाँति विशाल आकार धारण कर लेते हैं।। ४५

जब हवा नहीं चलती है, तब नदी के वक्ष पर रहने वाली छोटी-छोटी तरङ्गें मन में किसी प्रकार के भय का संचार नहीं करतीं। किन्तु, प्रबल वायु के बहने पर जब नदी का वक्ष आन्दोलित हो उठता है तबउन

उत्ताल तरङ्गों में अति निपुण नाविक भी दिशाहारा हो जाता है। काम-क्रोध की तरंग कमोबेश सब के हृदय में रहती है। रिपु का वेग जब हृदय को आंदोलित कर देता है तब प्रेमास्पद को भूल जाता हूँ और विषय भोग की ओर दौड़ पड़ता हूँ। जीवन का लक्ष्य है इन तरङ्गों के प्रभाव से मुक्त होकर चित को शान्त और प्रसन्न करना। तरङ्गहीन नदी के वक्ष पर जिस प्रकार पूर्णचन्द्र का प्रतिबिम्ब परिपूर्ण रूप से प्रतिभासित हो उठता है, शान्त हृदय में प्रेम का भी उसी प्रकार प्रकाश होता है। असत्सङ्ग हमें लक्ष्य से दूर खींच कर ले जाता है, कहाँ ले जाता है यह भी जानने नहीं देता। पुण्य के प्रभाव से या साधन-भजन के फल से किसी समय रिपु के प्रताड़ण का हमलोग विशेष रूप से अनुभव नहीं कर पाते, किन्तु इससे यदि हम यह समझ लें कि असत् के संसर्ग से हमारी और कोई क्षति नहीं होगी तो हम बड़ी भारी भूल कर बैठेंगे। प्रेम स्वरूप पारसमणि के स्पर्श से जबतक हृदय सोना नहीं हो जाता है, तबतक असत् के सङ्ग से मलिन हो जाने की आशंका बनी रहेगी। (क्रमशः)

साधकों के लिए

साधना के अनिवार्य अंग

—स्वामी यतीश्वरानन्द

अनुवादक: स्वामी ब्रह्मेशानन्द

(३) तपस्या

आध्यात्मिक जीवन में तपस्या का महत्त्वपूर्ण स्थान है। तप मनोनिग्रह के साधन हैं। वे कुछ हद तक उपयोगी हैं, पर उनकी अति नहीं करनी चाहिए।

कुछ लोग प्रतिदिन गंगा स्नान एक तप के रूप में करते हैं। किन्तु स्नान करते समय यदि गंगा-माहात्म्य तथा उसकी पावनी-शक्ति का स्मरण न रहे और हम उस समय दूसरों से गप-शप करते रहें, तो ऐसी तपस्या से क्या लाभ? कुछ लोग दिन में तीन बार स्नान करते हैं। मन को शुद्ध रखने का प्रयत्न यदि न किया जाये, तो इससे क्या लाभ होगा? कुछ लोग मौन धारण करते हैं, किन्तु यदि भगवच्चिन्तन द्वारा मन शान्त न हो, तो इस प्रकार जिह्वा को बांधने से क्षति ही होगी। ऐसी तपस्याएँ वास्तविक उपकार करने के बदले हमारे समय व शक्ति का क्षय मात्र ही करती हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि मन के मैल-अपवित्रता को दूर करना स्नान है, तथा इन्द्रियों का संयम ही वास्तविक शुचि है। "स्नानं मनोमलत्यागः", "शुचिः इन्द्रियनिग्रहः।"

भगवत्कृपा प्राप्त करने के लिए तपस्या भी कुछ मात्रा में आवश्यक है। गीता (अध्याय १८, १४-१५-१६ वें श्लोक) में तप तीन प्रकार के कहे गये हैं—शारीरिक, वाचिक व मानसिक। मौन को एक मानसिक तप कहा गया है। मौन का क्या अर्थ है? वह चुप रहना मात्र नहीं है। मुँह से शब्द उच्चारण न करते हुए भी तुम्हारे मन में असंख्य विचार उठ रहे होंगे। ध्यान के समय इसका अनुभव विशेष रूप से होता है। विचार तो मानसिक वचन ही हैं। गीता में कहे गये मौन का अर्थ है विचारों के धीरे-धीरे कम होने से उत्पन्न मानसिक मौन।

जिह्वा (वाणी) के नियंत्रण, तथा अहिंसा के अभ्यास से सत्य, और केवल सत्य कहने की आदत बन जाती है, और इससे आध्यात्मिक शक्ति वर्द्धित होती है। तीनों प्रकार के तप के सामंजस्य से मानसिक सन्तुलन स्थापित होता है और आध्यात्मिक प्रगति द्रुत-गति से होने लगती है।

★

ईश दूत ईसा

—स्वामी विवेकानन्द

[ईसा मसीह पर स्वामी विवेकानन्द के भाषण के कुछ अंश—सं०]

अब हम यहूदियों के पैगम्बर, ईसा मसीह के जीवन का कुछ विवेचन करेंगे। विविध जातियों के इतिहास में हमें उत्थान और पतन का क्रम दृष्टिगत होता है। ईसा का जन्म एक ऐसे युग में हुआ, जिसे हम यहूदी जाति का पतनकाल कह सकते हैं—एक ऐसा युग, जब व्यक्तियों की विचार-शक्ति कुछ शिथिल हो जाती है और वे अतीत के सपनों के नीड़ में विश्राम करने लगते हैं। जीवन-प्रवाह स्थिर होकर उसमें बदबू पैदा होने लगती है, विचार संकुचित होने लगते हैं, जीवन तथा जगत् की महान् समस्याएँ दृष्टि से ओझल हो जाती हैं और जाति के पूर्वकाल में जो उपार्जित किया है, उसी का वह क्लान्त होकर चर्वण और रक्षण करती रहती है। सारांश में, यह अवस्था दो तरंगों के उत्थान के बीच की पतनावस्था के समान ही थी। ध्यान रहे कि मैं इस अवस्था में कोई दोष नहीं देखता।

इसलिए हम अपने आलोच्य महापुरुष, जीवन के इस दिव्य सन्देशवाहक के जीवन का मूलमन्त्र यही पाते हैं कि "यह जीवन कुछ नहीं है, इससे भी उच्च कुछ और है।" और इस इन्द्रियातीत तत्व को अपने जीवन में परिणत कर उसने यह परिचय दिया है कि वह प्राची का सच्चा पुत्र है। पाश्चात्य देशों के निवासी भी अपने कार्यक्षेत्र में--सामरिक, राजनीतिक आदि कार्यो के संचालन में अपनी दक्षता एवं व्यावहारिकता का परिचय देते हैं। शायद, पूर्व का निवासी इन सब कार्यो में इतना कर्तृत्वपूर्ण नहीं है, किन्तु अपने निज के क्षेत्र में वह भी कार्यदक्ष है—अपने जीवन को अपने धर्म पर आधारित करने में उसने भी अपनी व्यवहार-कुशलता दिखायी है। यदि वह आज किसी दर्शन का प्रचार करता है, तो देखा जायगा कि कल ही सैकड़ों नर-नारी अपने जीवन में उसकी उपलब्धि करने का जी-तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं। यदि कोई व्यक्ति उपदेश करता है कि एक पैर पर खड़े रहने से मुक्ति सम्भव है, तो उसे अल्पकाल में ही एक पैर पर खड़े रहने वाले सैकड़ों अनुयायी मिल जायेंगे। शायद आप इसे हास्यास्पद समझते हों, किन्तु आप यह स्मरण रखें कि इसके पीछे उनके जीवन का यह मूलमन्त्र,उनका यह दर्शन विद्यमान है कि धर्म केवल विचार और मनन की वस्तु नहीं, जीवन में उसकी उपलब्धि एवं परिणति की जानी चाहिए। पाश्चात्य देशों में मुक्ति के जो विविध उपाय निर्दिष्ट किये जाते हैं, वे केवल बौद्धिक कलाबाजियाँ मात्र हैं और कभी भी उन्हें कार्य-रूप में परिणत करने का प्रयत्न नहीं किया जाता। पश्चिम में जो प्रचारक अच्छा वक्ता है, वही श्रेष्ठ धर्मोपदेष्टा मान लिया जाता है।

अतएव, हम देखते हैं कि प्रथमतः नाजरथ-निवासी ईसा पूर्व की सच्ची सन्तान थे—धर्म के क्षेत्र में अत्यन्त व्यावहारिक थे। उन्हें इस नश्वर जगत् तथा उसके क्षणभंगुर ऐश्वर्य मे विश्वास नहीं था। शास्त्र-वाक्यों को तोड़-मरोड़कर व्याख्या करने की, जो कि आजकल पाश्चात्य देशों में प्रथा-सी हो गयी है, कोई आवश्यकता नहीं। शास्त्र-वाक्य कोई रबर से लचीले नहीं हैं कि उन्हें जिधर चाहो उधर खींच लो और मरोड़ लो। और फिर खींचने मरोड़ने की भी तो सीमा है! शास्त्रों का जो अर्थ नहीं है, वह कितनी भी खींचातानी करने पर भी कैसे निकलेगा? धर्म को वर्तमान कालीन इन्द्रिय—सर्वस्वता का समर्थक बनाना बन्द कर देना चाहिए। कम से कम हमें अपने प्रति तो सच्चे तथा अकपटी बनने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि हम आदर्श का अनुगमन नहीं कर सकते, तो अपनी दुर्बलता स्वीकार कर लें, पर उसे हीन न बनायें, उसे अपने उच्च धरातल से न गिरायें।

पश्चिम के लोग, ईसा के चरित्र पर जो नित्य नये-नये और विभिन्न विवेचन प्रकाशित कर रहे हैं, उनसे हृदय अवसन्न हो जाता है, इन वर्णनों से इस बात का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता कि ईसा क्या थे और क्या नहीं। एक उन्हें महान् राजनीतिज्ञ बनाता है, तो दूसरा कहता है, ईसा एक बड़े युद्धविशारद सेनापति थे और तीसरा कहता है, वे एक देशभक्त यहूदी थे। इन सब धारणाओं के लिए क्या इन पुस्तकों में कोई आधार है? एक श्रेष्ठ धर्माचार्य के जीवन और उपदेशों पर सर्वश्रेष्ठ भाष्य उसका निज का जीवन ही है। स्वयं ईसा ने अपने विषय में कहा है: "लोमड़ियों और शृगालों के एक एक माँद होती है, नभचारी खगकुल अपने नीड़ में निवास करते हैं, पर मानवपुत्र (ईसा) के पास अपना सिर टेकने तक के लिए कोई स्थान नहीं है।" ईसा स्वयं त्यागी और वैराग्यवान थे, इसलिए उनकी शिक्षा भी यही है कि वैराग्य और त्याग ही मुक्ति का एकमेव मार्ग है. इसके अतिरिक्त मुक्ति का और कोई पथ नहीं है, यदि हममें इस मार्ग पर अग्रसर होने की क्षमता नहीं है, तो हमें मुख में तृण धारण कर विनीत भाव से अपनी यह दुर्बलता स्वीकार कर लेनी चाहिए कि हममें अब भी 'मैं' और 'मेरे' के प्रति ममत्व है, हममें धन और ऐश्वर्य के प्रति आसक्ति है। हमें धिक्कार है कि हम यह सब स्वीकार न कर, मानवजाति के उन महान् आचार्य का अन्य रूप से वर्णन कर उन्हें निम्न स्तर पर खींच लाने की चेष्टा करते हैं। उन्हें पारिवारिक बन्धन नहीं जकड़ सके। क्या आप सोचते हैं कि ईसा के मन में कोई सांसारिक भाव था? क्या आप सोचते हैं कि यह ज्ञानज्योति: स्वरूप अमानवी मानव, यह प्रत्यक्ष ईश्वर पृथ्वी पर पशुओं का समधर्मी बनने के लिए अवतीर्ण हुआ? किन्तु फिर भी लोग उनके उपदेशों का अपनी इच्छानुसार अर्थ लगा कर प्रचार करते हैं। उन्हें देह-ज्ञान नहीं था, उनमें स्त्री-पुरुष की भेद-बुद्धि नहीं थी—वे अपने को लिंगोपाधिरहित आत्मस्वरूप जानते थे। वे जानते थे कि वे शुद्ध आत्मस्वरूप है—देह में अवस्थित हो मानवजाति के कल्याण के लिए देह का परिचालन मात्र कर रहे हैं। देह के साथ उनका केवल इतना ही सम्पर्क था। आत्मा लिंगविहीन है। विदेह आत्मा का देह एवं पाशवभाव से कोई सम्बन्ध नहीं होता। अवश्यमेव त्याग और वैराग्य का यह आदर्श साधारण जनों की पहुँच के बाहर है। कोई हर्ज नहीं, हमें अपना आदर्श विस्मृत नहीं कर देना चाहिए। हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि त्याग हमारे जीवन का आदर्श है किन्तु अभी तक हम उस तक पहुँचने में असमर्थ हैं।

मैं शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मा हूँ, इस तत्व की उपलब्धि के अतिरिक्त ईसा के जीवन में अन्य कोई कार्य न था, और कोई चिन्ता न थी। वे वास्तव में विदेह, शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मस्वरूप थे। यही नहीं, उन्होंने अपनी अद्भुत दिव्य दृष्टि से जान लिया था कि सभी नर-नारी, चाहे वे यहूदी हों या किसी अन्य इतर जाति के हों, दरिद्र हों या धनवान, साधु हों या पापात्मा, उनके ही समान अविनाशी आत्मस्वरूप हैं। इसलिए उनके जीवन में हम एकमात्र यही कार्य देखते है कि वे सारी मानवजाति को अपने शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यस्वरूप की उपलब्धि करने के लिए आह्वान कर रहे हैं। उन्होंने कहा "यह कुसंस्कारमय मिथ्या भावना छोड़ दो कि हम दीन-हीन हैं। यह न सोचो कि तुम पर गुलामों के समान अत्याचार किया जा रहा है, तुम पैरों तले रौंदे जा रहे हो, क्योंकि तुममें एक ऐसा तत्व विद्यमान है, जिसे पददलित तथा पीड़ित नहीं किया जा सकता, जिसका विनाश नहीं हो सकता।" तुम सब ईश्वर के पुत्र हो, अमर और अनादि हो। अपनी महान् वाणी से ईसा ने जगत में घोषणा की, "दुनिया के लोगों, इस बात को भलीभाँति जान लो कि स्वर्ग का राज्य तुम्हारे अभ्यन्तर में अवस्थित है।"—"मैं और मेरे पिता अभिन्न हैं।" साहस कर खड़े हो जाओ और घोषणा करो कि मैं केवल ईश्वरतनय ही नहीं हूँ, पर अपने हृदय में मुझे यह भी प्रतीति हो रही है कि मैं और मेरे पिता एक और अभिन्न हैं। नाजरथ वासी ईसा मसीह ने यही कहा। जगत के साथ उनका कुछ भी सम्बन्ध न था—उनके साथ सम्पर्क केवल इतना ही था कि वे उसे प्रगति-पथ पर कुछ आगे की ओर बढ़ा देंगे—और धीरे-धीरे तब तक अग्रसर करते रहेंगे, जब तक कि समग्र जगत् उस परम ज्योति-परमेश्वर के निकट नहीं पहुँच जाता, जब तक कि प्रत्येक मानव अपने प्रकृत स्वरूप की उपलब्धि नहीं कर लेता, जब तक कि दुःख-कष्ट तथा मृत्यु जगत से सम्पूर्ण रूप से निर्वासित नहीं हो जाती। ★

"द टेन सूत्राज ऑर कार्डिनल प्रिन्सिपुल्स ऑफ हिन्दुइज्म"

लेखक—श्रीमत स्वामी मुख्यानन्द
आचार्य, एम० पी० टी० सेन्टर,
बेलुड़ मठ, कलकत्ता।

[पृष्ठ संख्या—२२; मूल्य ५ रुपये; महाविद्यालय- छात्रों के लिए मूल्य—२ रुपये।]

एक समीक्षात्मक अनुशीलन

स्वामी मुख्यानन्द, स्वामी विवेकानन्द के प्रख्यात शिष्य, स्वामी विरजानन्द से, १९३९ ई० में दीक्षित हुए थे। सन् १९५२ ई० में आप संन्यासी हुए। कुछ वर्षों तक आप 'प्रबुद्ध भारत' के संपादक तथा आठ खंडों में प्रकाशित 'कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया' के प्रकाशन प्रभारी थे। संप्रति आप संन्यासियों के प्रशिक्षण महाविद्यालय बेलुड़ मठ के आचार्य हैं। देश-विदेश में अंग्रेजी, हिन्दी, बंगला, मराठी और कन्नड़ आदि भाषाओं में आपने अनेक प्रवचन दिये हैं। 'भवन्स जरनल', 'वेदान्त केसरी', 'प्रबुद्ध भारत' आदि प्रख्यात पत्रिकाओं में आपके अनेक प्रवचन एवं निबंध प्रकाशित हैं। इन निबंधों में विचार की गंभीरता, विश्लेषण की प्रखरता एवं भाषा की प्रभावशाली प्रांजलता पायी जाती है। यद्यपि स्वामी जी के निबंधों में प्रस्तुतिकरण की मुख्य प्रक्रिया संश्लेषणात्मक रहती है, किन्तु तथ्य एवं विचार-विन्दु के स्थापन में तर्क एवं विश्लेषण का भी आवश्यक नियोजन रहता है। आध्यात्मिक विचार-धारा आधुनिक मानवीय संदर्भ में एक नई ताजगी एवं स्फूर्ति के साथ इनकी रचनाओं में अभिव्यक्त होती है।

हिन्दू धर्म के मूलभूत सिद्धांतों को सार-संक्षिप्त रूप में सरलतापूर्वक प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता से सभी प्रबुद्ध लोग अवगत हैं। यह आवश्यकता अन्य लोगों को समझाने से अधिक स्वयं हिन्दुओं की समझ को ठीक-ठाक रखने के लिए है। स्वामीजी की 'दस-सूत्री' इस दिशा में एक महत्वपूर्ण मील-स्तंभ है। यह हिन्दू-धर्म के मूलभूत सिद्धांतों का सम्यक् निर्देशन प्रदान करनेवाली अत्यंत उपयोगी परिचय-पुस्तिका है।

हिन्दू-धर्म धार्मिक-आध्यात्मिक जीवन का एक विशाल महासागर है। इसके बहुसंख्य आयाम हैं एक लंबे अरसे तक गंभीर, पूर्वाग्रह मुक्त एवं घनिष्ठ अध्ययन के बिना इसके महासागरीय साहित्य को समझा भी नहीं जा सकता। धर्म-जीवन के निम्नतम स्तर से उच्चतम की बातें इसमें समाहित हैं। सब तरह से उदार होने के कारण यह सबको स्वीकार करता है, और उन्हें अपने वर्तमान स्तर से क्रमशः उच्चतम पूर्णता की ओर ले जाता है। यह क्रमिक विकास में विश्वास करता है।

हजारों वर्ष पुराना अस्पृश्यता का दोष हिन्दू-धर्म का अविभाज्य अंग नहीं है। यह तो संक्रमण की घोर ऐतिहासिक स्थितियों से गुजरने वाले भारतीय समाज का दोष है। इससे मुक्त होने से अवश्य ही भारतीय समष्टि की काया स्वस्थ एवं गतिशील हो सकती है। तब हिन्दू समाज मानव मात्र के आध्यात्मीकरण के महान उद्देश्य की ओर अग्रसर हो सकता है।

किंतु अतिप्राचीन हिन्दू-समाज के ही दोष पर उंगली उठाना और अन्य धार्मिक-सामाजिक व्यवस्थाओं की नवीनतर समष्टियों के अनेक दोषों की उपेक्षा कर देना, घोर अन्याय है। कट्टरता, धर्मान्धता एवं धर्मोन्माद के कारण इन व्यवस्थाओं में घोर धार्मिक अस्पृश्यता व्याप्त है। उनके इतिहास घोर मानव-संहार, भीषण

सकता। अगर इसके लिए आज कोई सचेष्ट नहीं भी हो तो क्रमशः विकसित होकर वह अध्यात्म-पथ का अनुसरण करते हुए अवश्य ही परम लक्ष्य को प्राप्त करेगा।

इस तरह धर्म के सार-स्वरूप को संक्षेप में रखते हुए स्वामीजी ने हिन्दू-धर्म की तीन सर्वहितकारी प्रार्थनाओं के साथ इस उपयोगी रचना का समापन किया है। अंत में ओऊम् शांतिः, शांतिः, शांतिः के साथ विधिवत समापन हुआ है।

इस अद्भुत दस-सूत्री विवरणिका के व्यावहारिक पक्ष को उजागर करते हुए स्वामीजी ने बृहत् द्विजीकरण की योजना प्रस्तावित की है। ऊपर वर्णित सिद्धांतों से स्पष्ट है कि हिन्दू-धर्म एक विश्वजनीन धार्मिक-आध्यात्मिक जनतंत्र है। इसका संदेश मानव मात्र के हित के लिए है। इसके महत् उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिए महान् हिन्दू समाज को प्रस्तुत एवं तत्पर होना चाहिए। अस्पृश्यता आदि दोषों से निवृत्त होकर स्वस्थ तथा गतिशील हिन्दू समाज ही विश्व-बंधुत्व के स्थापन का सशक्त माध्यम हो सकता है। द्विजीकरण अस्पृश्यता के दोष से मुक्त होने की अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। आज वेदादि सनातन शास्त्र भली-भाँति प्रकाशित एवं ध्वनि-रूपों में सबको सुलभ हो गए हैं। पवित्र प्रणव एकाक्षर, प्रसिद्ध गायत्री मंत्र तथा द्विजसूत्रादि सभी उपेक्षितों एवं तथा-कथित अस्पृश्यों को सुयोग्य आचार्यों द्वारा विधिवत प्रदान किए जाने चाहिए। समर्थ संस्थाओं एवं सुयोग्य व्यक्तियों द्वारा यह महायज्ञ विशाल स्तर पर शीघ्र अनुष्ठित होना चाहिए। द्विजीकरण की यह प्रक्रिया सवर्णों के समक्ष आयोजित होनी चाहिए। पवित्र अग्नि में हवन करके सवर्णों एवं नव-सवर्णों के सपंक्ति भोजन से स्वस्थ समानता का विकास होगा। इस प्रसंग में स्वामी मुख्यानन्द ने स्वामी विवेकानन्द का ओजस्वी समर्थन भी उद्धृत किया है। अंततः हिन्दू-धर्म की सभी प्रमुख संस्थाओं एवं धर्म-नेताओं को इस महान् योजना में सहयोग करने का आह्वान किया गया है। स्वामीजी की मनस्वी दृष्टि में सनातन हिन्दू-धर्म के अनुसार विशाल स्तर पर द्विजीकरण का यह अनुष्ठान अनिवार्य युग धर्म है।

दस-सूत्री पुस्तिका के अंतिम दो पृष्ठों एवं आवरण पृष्ठों पर स्वामी विवेकानन्द के कुछ महत्त्वपूर्ण उद्धरण 'विश्व-धर्म' एवं 'परम ईश्वर' शीर्षकों के अंतर्गत प्रस्तुत किए गए हैं। इन उद्धरणों में हिन्दू-धर्म की उच्चतम संभावनाओं और उसकी सार्वभौम मानवीय व्यापकता का निदर्शन तथा आदर्श विश्व-धर्म के रूप में अद्भुत प्रस्तुतीकरण हुआ है। इनमें सनातन हिन्दू-धर्म के उच्चतम ईश्वर भाव की अत्यंत प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है। स्वामी विवेकानन्द के इन प्रासंगिक, काव्यात्मक दार्शनिक उद्गारों से समापन होने के कारण इस विचार-पोथी का चरम स्वर उदात्त एवं अविस्मरणीय हो गया है। पुस्तिका के ऊपरी आवरण के भीतर सर मोनिअर विलिअम्ज के एक महत्त्वपूर्ण उद्धरण में हिन्दू-धर्म की उन्हीं विशेषताओं को उजागर किया गया है जो उसे आदर्श मानव-धर्म के रूप में अत्यंत ही जीवंत और गति-शील बताते हैं। प्रारंभ में ही दिये गये इस उद्धरण से पुस्तिका की व्यापक भाव-धारा प्रामाणिक रूप से गठित हो जाती है।

इस तरह दस-सूत्री पुस्तिका वर्त्तमान युग के अनुकूल हिन्दू-धर्म का सर्वोपयोगी सार-संदेश है। अतः राष्ट्र-भाषा हिन्दी में इसका अनुवाद होना अत्यंत ही प्रासंगिक और उपयोगी होगा।

पुस्तिका का आवरण पृष्ठ हल्के गुलाबी रंग का है, जिस पर काले रंग के कलश में पल्लव का प्रतीक समीचीन और आकर्षक है। छपाई शुद्ध, सुन्दर एवं सुगमता से पाठ्य है। सूत्रों को मोटे अक्षरों एवं उनकी युक्तिपूर्ण व्याख्या को दूसरी तरह के पठनीय रूप में रखा गया है। अंतिम पृष्ठों के उद्धरणों में छोटे अक्षरों के रहने से मूल पोथी से उनका आवश्यक पार्थक्य स्पष्ट हो जाता है। सूत्रों के भाष्यों में युक्ति एवं तर्क प्रस्तुत करते हुए जहाँ-तहाँ आधुनिक परिपार्श्व से ही उपमा एवं

उदाहरण भी लिए गए हैं, जिससे इस अद्भुद पोथी की संप्रेषण शीलता व्यापक हो जाती है। ग्रंथकार के ही शब्द में इतने 'महासागरीय' हिन्दू-धर्म का अद्वितीय विचार-पोथी के रूप में प्रस्तुत होना आणविक संश्लेषण का अद्भुद् उदाहरण हैं। सनातन हिन्दू-धर्म के परम लक्ष्य की ओर हिन्दू-समाज को ले चलने की दिशा में, निश्चय ही, यह एक क्रान्तिकारी नेतृत्व है।

'दस-सूत्री' पुस्तिका हिन्दू समाज को जीवंत, स्वस्थ एवं प्रगतिशील बनाने की दिशा में एक अद्भुद् पथान्वेषण है। श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा का यह अधुनातन अवदान सबके लिए सुलभ और सर्वथा अनुसरणीय है। हिन्दू-धर्म को स्वस्थ एवं गतिशील बनाने के लिए यह अमृत तुल्य है। हिन्दू-समाज को अपने वीतराग किन्तु मनस्वी एवं कर्मनिष्ठ संन्यासियों से इसी प्रकार के पथ-निर्देशन की अपेक्षा रहती हैं। 'दस-सूत्री' पोथी यह माँग भली-भाँति पूरी करती है। इस क्रम में हमलोग और भी अनागत महासंकेतों की व्याकुलता से प्रतीक्षा करते हैं।

—शितिकंठ बोधिसत्व

स्वामी निरामयानन्दजी महाराज

बागबजार, उद्बोधन मठ, जिसे भक्तजन मायेर बाड़ी (श्रीमां सारदा का घर) कहते हैं, के अध्यक्ष श्रीमत स्वामी निरामयानन्दजी महाराज गत २६ नवम्बर, सोमवार की संध्या को बम्बई में आकस्मिक रूप से देह-त्याग कर दिया। श्रीरामकृष्ण लोकवासी हो गये। वे प्रख्यात वक्ता एवं सुप्रसिद्ध लेखक थे। उनकी आयु ७२ वर्ष की थी। गत २० नवम्बर को वे रामकृष्ण मिशन के कार्य से कलकत्ते से बम्बई गये थे।

भगवान श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा एवं स्वामीजी उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें—हमारी उनसे यही प्रार्थना है।

उदाहरण भी लिए गए हैं, जिससे इस अद्भुद पोथी की संप्रेषण शीलता व्यापक हो जाती है। ग्रंथकार के ही शब्द में इतने 'महासागरीय' हिन्दू-धर्म का अद्वितीय विचार-पोथी के रूप में प्रस्तुत होना आणविक संश्लेषण का अद्भुद् उदाहरण है। सनातन हिन्दू-धर्म के परम लक्ष्य की ओर हिन्दू-समाज को ले चलने की दिशा में, निश्चय ही, यह एक क्रान्तिकारी नेतृत्व है।

'दस-सूत्री' पुस्तिका हिन्दू समाज को जीवंत, स्वस्थ एवं प्रगतिशील बनाने की दिशा में एक अद्भुद् पथान्वेषण है। श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा का यह अधुनातन अवदान सबके लिए सुलभ और सर्वथा अनुसरणीय है। हिन्दू-धर्म को स्वस्थ एवं गतिशील बनाने के लिए यह अमृत तुल्य है। हिन्दू-समाज को अपने वीतराग किन्तु मनस्वी एवं करुणित संन्यासियों से इसी प्रकार के पथ-निर्देशन की अपेक्षा रहती है। 'दस-सूत्री' पोथी यह माँग भली-भांति पूरी करती है। इस क्रम में हमलोग और भी अनागत महासंकेतों की व्याकुलता से प्रतीक्षा करते हैं।

—शितिकंठ बोधिसत्व

स्वामी निरामयानन्दजी महाराज

बागबजार, उद्बोधन मठ, जिसे भक्तजन मायेर बाड़ी (श्रीमां सारदा का घर) कहते हैं, के अध्यक्ष श्रीमत स्वामी निरामयानन्दजी महाराज गत २६ नवम्बर, सोमवार की संध्या को बम्बई में आकस्मिक रूप से देह-त्याग कर दिया। श्रीरामकृष्ण लोकवासी हो गये। वे प्रख्यात वक्ता एवं सुप्रसिद्ध लेखक थे। उनकी आयु ७२ वर्ष की थी। गत २० नवम्बर को वे रामकृष्ण मिशन के कार्य से कलकत्ते से बम्बई गये थे।

भगवान श्रीरामकृष्ण, श्रीमां सारदा एवं स्वामीजी उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें—हमारी उनसे यही प्रार्थना है।

पवित्र होना और दूसरों का हित करना—सभी उपासनाओं का यही सार है। जो दरिद्रों में, दुर्बलों में और रोगियों में शिव को देखता है, वही शिव की सच्ची पूजा करता है और यदि वह केवल प्रतिमा में शिव को देखता है, तब उसकी पूजा मात्र प्रारंभिक है।

—स्वामी विवेकानन्द

मंगल कामनाओं के साथ :

मंगला मेटल्स

मेटल कन्टेनर के निर्माता
एवम् जेनरल आर्डर सप्लायर्स
ए २, पत्रकार नगर,
कंकड़बाग कॉलोनी,
पटना—२०

This is the gist of all worship—to be pure and to do good to others. He who sees Siva in the poor, in the weak, and in the diseased, really worships Siva; and if he sees Siva only in the image, his worship is but preliminary.

—SWAMI VIVEKANANDA

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

MANGALA METALS

(Manufacturer of Metal Container and General Order Suppliers)
A 2, Patrakar Nagar,
Kankarbagh Colony,
PATNA—20